2010:CGHC:8367

प्रकाशन हेतु अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय : बिलासपुर

एकलपीठ : माननीय श्री न्यायमूर्ति मनीन्द्र मोहन श्रीवास्तव

रिट याचिका क्रमांक : 741/2005

याचिकाकर्ता : टी. पी. प्रजापति

विरूद्ध

उत्तरवादीगण : मध्यप्रदेश राज्य एवं अन्य दो

आदेश के उदघोषणा हेतु सूचीबद्ध किया जाए।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

सही/-
मनिन्द्र मोहन श्रीवास्तव
न्यायाधीश

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय : बिलासपुर

एकलपीठ : माननीय श्री न्यायमूर्ति मनीन्द्र मोहन श्रीवास्तव

रिट याचिका क्रमांक : 741/2005

याचिकाकर्ता : टी. पी. प्रजापति

विरूद्ध

उत्तरवादीगण : मध्यप्रदेश राज्य एवं अन्य दो

.....

उपस्थित :–

श्री डी. एन. प्रजापति, याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता।

श्री चन्द्रेश श्रीवास्तव, राज्य की ओर से पैनल अधिवक्ता।

.....

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

आदेश

(दिनांक 14 जून, 2010 को पारित)

1. इस याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने उत्तरवादीगणों को यह निर्देश जारी किए जाने की प्रार्थना की है कि उसे प्रधानाचार्य के पद पर 27/06/1984 से वरिष्ठता प्रदान की जाए, अर्थात् उस तिथि से जब याचिकाकर्ता से कनिष्ठ व्यक्तियों को पदोन्नति प्रदान की गई थी।याचिकाकर्ता ने यह भी प्रार्थना की है कि पदोन्नति दिनांक 27/06/1984 से प्रभावी मानते हुए वेतन, वार्षिक वेतनवृद्धि तथा अन्य लाभों के भुगतान हेतु भी उत् तरवादीगणों को निर्देशित किया जाए।

2. वर्तमान याचिका के निस्तारण हेतु सुसंगत एवं आवश्यक तथ्यों का संक्षेप इस प्रकार है कि याचिकाकर्ता की प्रारम्भिक नियुक्ति 19/12/1973 (अनुलग्नक-अ) के आदेश द्वारा जनजातीय विकास संचालनालय के अधीन एक विद्यालय में व्याख्याता के पद पर की गई थी। दिनांक 27/06/1984 को एक पदोन्नति आदेश पारित किया गया, जिसके द्वारा व्याख्याता के पद से प्रधानाचार्य के पद पर पदोन्नति दी गई। याचिकाकर्ता का कथन है कि 01/04/1982 की स्थिति दर्शाते हुए तैयार की गई व्याख्याताओं की वरिष्ठता सूची में

क्रमांक 880 तक के व्याख्याताओं को पदोन्नत कर दिया गया, किन्तु याचिकाकर्ता को अनदेखा कर दिया गया, जबकि उनके अनुसार वे समान रूप से योग्य हैं तथा उनका कार्यप्रदर्शन भी संतोषजनक है। याचिकाकर्ता ने इस संबंध में अभ्यावेदन प्रस्तुत किए, किन्तु उनकी शिकायत का निवारण नहीं किया गया। याचिकाकर्ता का कहना है कि वरिष्ठता सूची **(**अनुलग्नक -डी **)** में क्रमांक **436, 461, 478, 484, 486** तथा **586** पर दर्शाए गए व्याख्याताओं को पदोन्नति प्रदान की गई। वरिष्ठता स्थिति दिनांक **01/04/1987** तक दर्शाते हुए, उपर्युक्त व्याख्याताओं की नियुक्ति याचिकाकर्ता के पश्चात् की गई थी और इस प्रकार वे उससे कनिष्ठ थे, फिर भी याचिकाकर्ता के दावे की उपेक्षा करते हुए उन्हें पदोन्नत कर दिया गया। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदनों दिनांक **10/02/1986** एवं **10/06/1986** के संदर्भ में, ज्ञापन दिनांक **07/05/1987 (**अनुलग्नक **–ई)** के माध्यम से यह सूचित किया गया कि याचिकाकर्ता का अभ्यावेदन विचाराधीन है। अंततः, ज्ञापन दिनांक **02/09/1987 (**अनुलग्नक **–** एफ**)** द्वारा याचिकाकर्ता का अभ्यावेदन अस्वीकार कर दिया गया। लगभग तीन वर्ष पश्चात्, याचिकाकर्ता को **30/07/1990 (**अनुलग्नक -जी**)** के आदेश द्वारा प्रधानाचार्य के पद पर पदोन्नति दी गई। तत्पश्चात्, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता को **31/10/1991 (**अनुलग् नक **–**एच**)** को एक विधिक नोटिस प्रेषित किया गया। चूँकि याचिकाकर्ता के दावे को स्वीकार नहीं किया गया, अतः वर्तमान याचिका प्रस्तुत की गई।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

3. उत्तररवादियों द्वारा प्रस्तुत जवाब में सबसे प्रथम आपत्ति का आधार याचिका दायर करने में विलंब को लेकर उठाया गया है। यह कहा गया है कि विभागीय पदोन्नति समिति *(*डी. पी. सी*)* की बैठक वर्ष **1984** में आयोजित हुई थी, जिसमें याचिकाकर्ता का प्रकरण विचाराधीन रहा। चूँकि वह समिति द्वारा निर्धारित मानदंडों पर उपयुक्त नहीं पाया गया, इसलिए उसे पदोन्नति नहीं दी जा सकी। किन्तु, जब वर्ष **1990** में वह उपयुक्त पाया गया, तब उसे पदोन्नति प्रदान की गई। जवाब-दावा' के तौर पर, याचिकाकर्ता ने यह अभिकथन किया है कि कर्मचारी के प्रदर्शन को अच्छा, औसत या खराब होने के बारे में उसे सूचित किया जाना चाहिए था, और यह आधार कि वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों (ए सी आर) के संचयी विचार पर याचिकाकर्ता न्यूनतम आवश्यक शर्त, यानी कम से कम 3

'अच्छी' प्रविष्टियाँ, अर्जित नहीं कर सका, विधि में अस्थिर है और विधित: मान्य नहीं है, याचिकाकर्ता ने विलंब से संबंधित आपत्ति के संबंध में उच्चतम न्यायालय द्वारा के.एम. मिश्रा बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, (2008) 9 सु.को.केसेस , 120 और देवदत्त बनाम यूनियन ऑफ

इंडिया, (2008) 8 सु.को.केसेस, 725 के मामलों में प्रतिपादित किए गए सिद्धांत का अवलंब लिया है।इस संदर्भ में, यह प्रस्तुत किया गया है कि जब कनिष्ठों को वर्ष 1984 में पदोन्नत किया गया था; तब से याचिकाकर्ता अभ्यावेदन कर रहा था लगातार आवेदन दे रहा था। उनका अभ्यावेदन अंततः 02/09/87 को खारिज कर दिया गया था। उसके बाद, उन्हें 30/07/90 को जारी आदेश के माध्यम से पदोन्नत किया गया, और याचिका दायर करने की तारीख 12/04/93 तक, याचिकाकर्ता अपनी शिकायत को लेकर लगातार संघर्ष कर रहा था। यह प्रस्तुत किया गया है कि विलंब को संतोषजनक ढंग से समझाया गया है। विलंब को सही ठहराने के लिए उच्चतम न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास किया गया है:- रामचंद्र देवधर बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर 1974 सुप्रीम कोर्ट, 259 , शिबा शंकर मोहपात्रा और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य, ए.आई.आर 2010 सुप्रीम कोर्ट, 706.

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि उत्तरवादीगण के जवाब से यह पता चलता है कि पदोन्नतियाँ 'वरिष्ठता को उचित महत्व देते हुए योग्यता के मानदंड को लागू करके की गई थीं। और गैर-पदोन्नति का मुख्य क्रियाशील कारण यह था कि याचिकाकर्ता पाँच वर्षों में से कम से कम 3 अच्छी' वार्षिक गोपनीय रिपोर्टें का न्यूनतम बेंचमार्क प्राप्त करने में विफल रहा, जिसमें अंतिम वर्ष की अच्छी' (ए.सी.आर) वार्षिक गोपनीय रिपोर्टें भी कम से कम 'अच्छी' होनी चाहिए थी। याचिकाकर्ता का यह निवेदन है कि अंतिम टिप्पणियाँ, चाहे कर्मचारी 'बहुत अच्छा' हो, 'औसत' हो या 'खराब' हो, उन्हें उसे (कर्मचारी को) सूचित किया जाना चाहिए था, और उन टिप्पणियों को सूचित किए बिना, उन्हें पदोन्नति के लिए उनकी उपयुक्तता का आकलन करने का आधार नहीं बनाया जा सकता था। याचिकाकर्ता का यह निवेदन है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा देव दत्त बनाम यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य (2008) 8 सुप्रीम कोर्ट केसेस 725 और के.एम.

मिश्रा बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया और अन्य (2008) 9 सुप्रीम कोर्ट केसेस 120 के मामलों में प्रतिपादित विधि के प्रकाश में, केवल प्रतिकूल टिप्पणियाँ ही सूचित किया जाना आवश्यक नहीं हैं, बल्कि प्रत्येक टिप्पणी, चाहे वह अच्छी हो या बुरी या औसत या प्रतिकूल, याचिकाकर्ता को सूचित की जानी चाहिए। विलंब से संबंधित आपत्ति का जवाब देते हुए, यह कहा गया है कि 1954 के बाद कनिष्ठों को पदोन्नत किया गया था, जिसके उपरांत याचिकाकर्ता द्वारा अभ्यावेदन किए गए थे, और 07/08/87 के ज्ञापन के माध्यम से याचिकाकर्ता को सूचित किया गया था कि उनका अभ्यावेदन विचाराधीन है। वह अभ्यावेदन अंततः 02/09/87 को खारिज कर दिया गया था, जिसके बाद याचिकाकर्ता को वर्ष 1990 में पदोन्नत किया गया। याचिकाकर्ता इस याचिका के 12/04/93 को दायर होने तक नोटिस देकर अपनी शिकायत को लेकर संघर्ष उठा रहा था। अतः विलंब को पूरी तरह से समझाया गया है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

5. इसके विपरीत , उत्तरवादीगण के विद्वान अधिवक्ता का यह निवेदन है कि यह तत्काल याचिका अत्यधिक और असाधारण विलंब के बाद दायर की गई है। उनका तर्क है कि पदोन्नतियाँ वर्ष 1984 में की गई थीं और याचिकाकर्ता का अभ्यावेदन अंततः 02/09/87 के ज्ञापन (अनुलग्नक एफ) के माध्यम से खारिज कर दिया गया था, जिसके बाद याचिकाकर्ता को न्यायालय की शरण में जाना चाहिये था, लेकिन याचिकाकर्ता ने कोई विधिक उपाय नहीं अपनाया और उस कार्रवाई में मौन सहमति दे दी। लगभग 3 साल बाद, याचिकाकर्ता को 30/07/90 के आदेश (अनुलग्नक -जी) द्वारा, कार्यभार ग्रहण करने की तिथि से, योग्य पाए जाने पर पदोन्नति प्रदान की गई। लगभग 3 साल बाद, यह त्वरित याचिका दायर की गई। उत्तरवादीगणों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन में, चूंकि याचिकाकर्ता का अभ्यावेदन वर्ष 1987 में खारिज कर दिया गया था, और यह याचिका 12/04/93 को दायर की गई है। याचिका दायर करने में लगभग 6 साल का विलंब हुआ है और इतने विलंबित तथा निष्क्रीय दावे पर इस न्यायालय के हस्तक्षेप को उचित ठहराने के लिए मुश्किल से ही कोई स्पष्टीकरण है।

6. मामले के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को वर्ष 1984 में अतिलंघन का सामना करना पड़ा। ज्ञापन दिनांक 02/09/87 (अनुलग्नक एफ द्वारा, याचिकाकर्ता को सूचित किया

गया कि उसका अभ्यावेदन दिनांक 10/02/86 खारिज कर दिया गया है। याचिकाकर्ता ने यह दावा किया था कि उसे उस तारीख से पदोन्नति दी जाए जिस तारीख से कथित तौर पर उससे कनिष्ठ अन्य व्यक्तियों को पदोन्नत किया गया था, अर्थात् 27/06/84। इस प्रकार, याचिकाकर्ता का पदोन्नति का दावा दिनांक 27/06/84 से प्रभावी होने के संबंध में 02/09/87 के ज्ञापन द्वारा खारिज कर दिया गया था। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने यद्यपि अभ्यावेदन किए, जैसा कि उसने अपने जवाब-दावा में प्रकट किया है, लेकिन उसने राज्य प्रशासनिक न्यायाधिकरण के समक्ष कोई याचिका दायर नहीं की, जो उस अवधि के दौरान कार्यशील था। उन्हें वर्ष 1990 में पदोन्नत किया गया था। चूंकि याचिकाकर्ता के 27/06/84 से पदोन्नति प्रदान किए जाने का दावा 02/09/87 के ज्ञापन द्वारा अस्वीकृत और सूचित कर दिया गया था, इसलिए बाद के विचार पर पदोन्नति प्रदान किया जाना याचिकाकर्ता के लिए 27/06/84 से पदोन्नति देने के उनके आवेदन की अस्वीकृति के कारण अपनी शिकायत के निवारण के लिए विधि के समक्ष याचिका प्रस्तुत करने का औचित्य प्रदान नहीं करता है इसलिए यह स्पष्ट है कि वरिष्ठता और पदोन्नति प्रदान करने के संबंध में, याचिकाकर्ता ने अपने अभ्यावेदन की अस्वीकृति की तिथि अर्थात 02/09/87 (अनुलग्नक एफ) को सूचित किए गए ज्ञापन के बाद लगभग 6 वर्षों तक न्यायिक उपचार के लिये कोई प्रयास नहीं किया।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

7. ए.जे. फर्नांडिस बनाम डिविजनल मैनेजर, साउथ सेंट्रल रेलवे और अन्य **(2001) 1** सु.को.के. **240**' के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने जो सिद्धांत प्रतिपादित किया है, वह इस प्रकार है:-

> "14. वैसे भी , यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि अपीलार्थी को 28.5.1983 को 'टिकट कलेक्टर' के पद पर पदोन्नत किया गया था। इसके बाद, उन्हें 25.9.1986 को 'सीनियर टिकट कलेक्टर' के रूप में पदोन्नत किया गया। फिर अपीलार्थी को 25.5.1987 को 'ट्रेन टिकट एग्ज़ामिनर' के रूप में पदोन्नत किया गया। तीसरे उत्तरवादी ने अपीलार्थी की 'टिकट कलेक्टर' के रूप में पदोन्नति को केवल 11.12.1987 को चुनौती देने का फैसला किया, यानी 4 साल की अवधि के बाद। विलंब

और निष्क्रियता के आधार पर भी, तृतीय उत्तरवादी का आवेदन खारिज किया जाना चाहिए था।"

8. उत्तरांचल वन विकास निगम और एक अन्य बनाम जबर सिंह और अन्य, **(2007) 2** एस.सी.सी **112** के मामले में, यह निम्नानुसार उद्धृत किया गया था:-

"43. सेवा समाप्ति का आदेश वर्ष 1995 में दिया गया था और यह स्वीकार्य है कि रिट याचिकाएँ दस वर्ष के विलंब के बाद वर्ष 2005 में दायर की गईं। हमारे अभिमत में, उच्च न्यायालय द्वारा याचिका को 10 साल के विलंब के आधार पर विचारार्थ स्वीकार करना उचित नहीं था, और उच्च न्यायालय को रिट याचिकाओं को निष्क्रियता के आधार पर खारिज कर देना चाहिए था।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

9. इसके अतिरिक्त , न्यू दिल्ली म्यूनिसिपल काउंसिल बनाम पान सिंह और अन्य, (2007) 9 सु.को.के. 276 के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने उन सिद्धांतों को पुनः दोहराया जो ऐसे मामलों में हस्तक्षेप से संबंधित हैं जहाँ याचिकाकर्ता अस्पष्टीकृत विलंब के साथ न्यायालय के समक्ष उपस्थित होता है, जो निम्नानुसार हैं :-

"16. प्रकरण का एक और पहलू है जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। यहाँ उत्तरवादीगणों ने 17 साल बाद रिट याचिका दाखिल की। उन्होंने लंबे समय तक अपनी शिकायतों को सक्रिय रूप से उठाया नहीं। जैसा कि इसमें उल्लेख किया गया है, उन्होंने पहले अवसर पर ही 17 कर्मचारियों के साथ समानता का दावा नहीं किया। राज्य द्वारा औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष किए गए संदर्भ में भी उन्होंने स्वयं को पक्षकार के रूप में शामिल नहीं किया। यह उनका प्रकरण नहीं है कि 1982 के बाद, उन कर्मचारियों को उक्त वेतनमान दिया गया है जिन्हें 'कट-ऑफ डेट' के बाद नियोजित या भर्ती किया गया था।

अतः, इतने लंबे समय के बाद, रिट याचिकाओं को स्वीकार नहीं किया जा सकता था, भले ही वे समान विषय पर आधरित हों। यह स्थापित सिद्धांत है कि विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग उन लोगों के पक्ष में नहीं किया जा सकता जो लंबे समय बाद न्यायालय आते हैं। विलंब और निष्क्रियता समतामूलक क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए सुसंगत कारक हैं। (देखें: गवर्नमेंट ऑफ वेस्ट बंगाल बनाम तरुण के. रॉय; यू.पी. जल निगम बनाम जसवंत सिंह; और कर्नाटक पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम के. थंगप्पन)।"

10. पी.एस. सदाशिवस्वामी बनाम तमिलनाडु राज्य, **(1975) 1** सु.को.के **152** के प्रकरण में, यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है:-

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

"यह नहीं है कि न्यायालयों के लिए अनुच्छेद 226 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करने हेतु कोई परिसीमा अवधि है, और न ही यह कि ऐसा कोई प्रकरण कभी नहीं हो सकता जहाँ न्यायालय एक निश्चित अवधि बीत जाने के बाद भी हस्तक्षेप न कर सकें। लेकिन, यह न्यायालयों के लिए विवेक का एक सुदृढ़ और बुद्धिमत्तापूर्ण प्रयोग होगा कि वे उन व्यक्तियों के मामले में अनुच्छेद 226 के तहत अपनी असाधारण शक्तियों का प्रयोग करने से इनकार कर दें, जो अनुतोष के लिए शीघ्रता से उसके पास नहीं आते हैं, और जो मौन खड़े रहते हैं और प्रक्रिया को होने देते हैं, और फिर न्यायालय के पास विलंबित दावे प्रस्तुत करने और स्थापित प्रकरणों को अस्थिर करने की कोशिश करते हैं।"

11. रूप सिंह बनाम यूनियन ऑफ इंडिया**, (1992) 3 SCC 136** के प्रकरण में, यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया था:-

"8. प्रकरण का एक और पहलू है। असाधारण और अस्पष्टीकृत विलंब या निष्क्रियता स्वयं में याचिकाकर्ता को अनुतोष प्रदान करने से

इनकार करने का आधार है; भले ही उसके दावे में कितना भी गुण क्यों न हो। यदि कोई व्यक्ति अनुतोष का अधिकारी होने के बावजूद लंबे समय तक मौन रहना चुनता है, तो वह दूसरों के मन में एक उचित विश्वास को जन्म देता है कि वह उस अनुतोष का दावा करने में रुचि नहीं रखता है। तब अन्य लोग उस विश्वास पर कार्य करने में उचित ठहराए जाते हैं। यह सेवा प्रकरणों में और भी अधिक महत्वपूर्ण है जहाँ रिक्तियों को तत्काल भरा जाना आवश्यक है। किसी व्यक्ति को असाधारण विलंब के लिए किसी ठोस स्पष्टीकरण के बिना, अपनी सेवा समाप्ति को बाईस वर्ष की अवधि के बाद चुनौती देने की अनुमति नहीं दी जा सकती, केवल इसलिए कि इसी तरह बर्खास्त किए गए अन्य लोगों को उनकी पिछली याचिकाओं के स्वीकार होने के परिणामस्वरूप बहाल कर दिया गया था।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

12. रामचंद्र शंकर के निर्णय (पूर्वोक्त) में, उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा है कि वह नियम जो कहता है कि न्यायालय विलंबित या निष्क्रीय दावों की जाँच नहीं कर सकता—यह विधि का नियम नहीं है, बल्कि विवेक के सुदृढ़ और उचित प्रयोग पर आधारित एक व्यवहार का नियम है। उपरोक्त निर्णय का सिद्धांत यह है कि यह प्रश्न 'विवेक का' है जिसका पालन प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर किया जाना है।"

13. वर्तमान प्रकरण में, विचार विमर्श के पश्चात, मैं याचिकाकर्ता के पक्ष में अपने विवेक का प्रयोग करने को इच्छुक नहीं हूँ, क्योंकि बार-बार अभ्यावेदन न्यायालय का रुख करने में हुए विलंब को उचित नहीं ठहराते हैं, जैसा कि एस.एस. राठौर बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1989 (4) सु.को.के 582 के प्रकरण में उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है। शिबा शंकर मोहपात्रा (पूर्वोक्त) के प्रकरण में, यह अवधारित किया गया था कि एक बार जब वरिष्ठता तय कर दी जाती है और वह उचित अवधि तक अस्तित्व में रहती है, तो उसे कोई भी चुनौती

स्वीकार नहीं की जानी चाहिए। के.आर. मुदगल के प्रकरण के सिद्धांत पर विश् वास करते हुए, उच्चतम न्यायालय ने अवधारित किया कि एक वरिष्ठता सूची, जो 3-4 वर्षों तक चुनौती के बिना रह जाती है तो उसे अस्थिर नहीं किया जाना चाहिए।

14. इस चरण में यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि याचिकाकर्ता का 26/07/84 से पदोन्नति का दावा करने वाला अभ्यावेदन 02/09/87 को खारिज कर दिया गया था, और मध्य प्रदेश राज्य में राज्य प्रशासनिक न्यायाधिकरण, प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985 के प्रावधानों के तहत वर्ष 1988 में अस्तित्व में आया था। उक्त अधिनियम की सांविधिक योजना के तहत, वाद कारण के संबंध में न्यायाधिकरण की स्थापना की तारीख से एक वर्ष के भीतर मूल आवेदन दायर किया जा सकता था, जो न्यायाधिकरण की स्थापना की तारीख से ठीक 3 वर्ष पहले की अवधि के दौरान किसी भी समय उत्पन्न हुआ था। इस प्रकार, किसी भी परिस्थिति में, उस समय मौजूद विधि के अनुसार याचिकाकर्ता को वर्ष 1989 में याचिका दायर करना आवश्यक था। हालांकि, याचिकाकर्ता ने लगभग 4 वर्षों तक कोई याचिका दायर नहीं की। यद्यपि यह न्यायालय प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985 के तहत प्रदान किए गए परिसीमा से संबंधित प्रावधानों से बाध्य नहीं है, फिर भी, विवेक का प्रयोग करते समय, यह एक सुसंगत पहलू है। अंतिम विश्लेषण में, यह न्यायालय का अभिमत है कि याचिका विलंब से ग्रस्त है और इसलिए इसे केवल विलंब और निष्क्रियता के आधार पर खारिज किया जाता है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

सही/-

मनिन्द्र मोहन श्रीवास्तव

न्यायाधीश

अस्वीकरणः हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरुप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।

Translated By- अजय कुमार अग्निहोत्री अधिवक्ता

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur